वीर संवत २४९२, फागुन शुक्ल ६, शनिवार
दि.२६-२-१९६६, गाथा-११ से १४, प्रवचन नं.-३७

यह 'छहढाला', इसकी चौथी ढाल चलती है। ११ वाँ श्लोक पूर्वार्ध है। यह क्या अधिकार चलता है ? व्रत का... व्रत का। जो श्रावक के बारह व्रत है न ? उनका। पहले कह गये (हैं)। सम्यग्ज्ञानी होकर फिर सम्यक्चारित्र दृढ़पने ग्रहण करना। पहले तो शुद्धस्वरूप पूर्ण अखण्ड अभेद है, उसको रुचि और सन्मुख की दृष्टि हुए बिना जो मिथ्यात्व है – एक राग के अंश के कण का भी जो आदर करता है, वह अनन्त शुद्धस्वभाव का अनादर करता है। ऐसे मिथ्यात्वभाव में अनन्त नरक और निगोद भव की शक्ति पड़ी है। पहले उस भव की शक्ति का नाश करता है। समझ में आया ? इसलिए कहा न ? प्रथम ज्ञान होकर, आया था न क्या (था) ?

'**सम्यग्ज्ञानी होय, बहुरि दिढ चारित लीजै;...**' है न ? भाई ! उसका अर्थ क्या ? कि एक समय में आत्मा... विकार, राग, भ्रम आदि एक क्षण का है, परन्तु उस भ्रमणा का अर्थ परम शुद्ध चैतन्य अनन्त गुण समाज स्वरूप वीतराग पिण्ड आत्मा की रुचि न करके राग की रुचि (करना), यही मिथ्यात्व है। समझ में नहीं आता ? ऐ..ई.. ! भाई !

यहाँ तो व्रत कब होते हैं ? कि ऐसी भूमिका जिसकी अन्तर शुद्ध अनन्त ज्ञान आदि स्वभाव, एक समय का जो विकार, उससे रहित (है), उसकी दृष्टि रुचि होने पर, उसका ज्ञान होने के पश्चात् स्वरूप में स्थिरता के अंश प्रकटे, उसे ऐसे बारह व्रत के विकल्प होते हैं; नहीं तो शुद्धस्वरूप पूर्ण है, उसकी जहाँ रुचि और आदर अन्तर में नहीं और एक मन्द का राग कण है, उसका भी जहाँ आदर है तो उसका अर्थ स्वभाव अनन्त गुण का अनादर अर्थात् मिथ्यात्व है। यह मिथ्यात्व का पाप, उसका अनर्थपना जब तक भासित न हो और सम्यक् का अर्थपना प्रयोजनभूत मोक्ष, सम्यग्दर्शन अर्थात् आत्मा का मोक्ष स्वभाव, जिसने अन्तर में प्रतीत किया,

उसकी महिमा न भासे, तब तक उसे यह व्रत आदि के विकल्प सच्चे नहीं होते। समझ में आया ?

मुमुक्षु :- ...

उत्तर :- यह वस्तु का स्वरूप है। इस प्रकार दृष्टि हुई हो, तब अन्तर में स्थिरता का अंश बढ़ा हो, तब उसे ऐसे विकल्प होते हैं, उन्हें व्यवहार, व्रत और पुण्यबन्ध का कारण कहा जाता है। कहो, इसमें समझ में आया ? यह दृढ़ चारित्र, स्वरूप में स्थिरता का अंश हो तब उसे ऐसे व्रत के विकल्प आते हैं, वह ले - ऐसा कहा जाता है। कहो ! इसलिए कहा न पहले ? वस्तु जो है अनन्त चैतन्य गुणधाम, उसका बहुमान होकर जहाँ अन्तर रुचि और दृष्टि नहीं हुई, (वह) तो राग और निमित्त के प्रेम में रुचि में पड़ा है, वह तो मिथ्यात्व है। सत्य वस्तु का अनादर है और असत्य का आदर है, उसका नाम मिथ्यात्व (है)।

बात यह है कि इस मिथ्यात्व का अनर्थपना और सम्यग्दर्शन का प्रयोजन और अर्थपना, उसकी महिमा जब तक न आवे, तब तक वस्तु की दृष्टि नहीं होती। राग की मन्दता, यह तो एक व्यवहार परिमित दोष है; चारित्रदोष है, वह परिमित, परिमित मर्यादित, हदवाला दोष है; वह बेहद दोष मिटने के बाद (मिटता है)। बेहद दोष, अर्थात् मिथ्यात्व। बेहद स्वभाव अर्थात् आत्मा। क्या कहा ? बेहद दोष अर्थात् मिथ्यात्व, बेहद स्वभाव अर्थात् आत्मा। अनन्त, अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द की मूर्ति आत्मा, उसका पहलू छोड़कर पुण्य-पाप के राग के पक्ष की रुचि में खड़ा है, वह महा अनन्त मिथ्यात्व शक्ति में (खड़ा है)। अनन्त नरक और निगोद करने की मिथ्यात्व में शक्ति है। समझ में आया ?

भगवान आत्मा ! उस बहिर्मुख की वृत्ति की रुचि छोड़कर, अन्तर्मुख स्वभाव शुद्ध शुद्ध पूर्ण बेहद अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन आदि एक-एक गुण बेहद है। ऐसा पूरा तत्त्व बेहद स्वरूपी प्रभु मुक्तस्वरूप, वीतरागस्वरूप है, उसकी अन्तर में रुचि होने पर बेहद मिथ्यात्व का, पाप का नाश और बेहद मुक्ति के उपाय की कणिका जागृत हुई, आहा..! क्या हो ? यह तो रात्रि में वे कहते थे न ? व्यवहार का उपदेश जरूर पडेगा। यह सब विचारो... अरे..! यह क्या कहते हैं ? भाई !

मुमुक्षु :- व्यवहार का विकल्प...

उत्तर :- परन्तु विकल्प उठना उपदेश, वही व्यवहार है। यह निश्चय का उपदेश करना, वह भी विकल्प और व्यवहार है।

मुमुक्षु :- सुनना वह.. ?

उत्तर :- वह भी व्यवहार है। क्या व्यवहार नहीं क्या ? भाई ! यह व्रत कब हो - इतनी भूमिका के लिए यह पहले उपोद्घात होता है। समझ में आया ? आज तो अब गुजराती है न, आज कोई (हिन्दी) नहीं। अधिक स्पष्ट होता है, ऐसा भाई के कहे अनुसार।

यहाँ तो भगवान आत्तमा एक सैकेण्ड के असंख्य भाग में, भ्रम एक समय का, मिथ्यात्व एक समय का काल; उसमें भाव अनन्त अनन्त नरक औरनिगोद की शक्ति का तत्त्व मिथ्यात्व में है, क्यों ? कि जो वस्तु है, वह भव के भावरहित चीज़ है। वस्तु है, वह भव और भाव का भाव - मिथ्यात्व, राग-द्वेष आदि भव का भाव, उससे रहित वह चीज़ है। आहा..हा.. ! ऐसा वस्तु स्वभाव अन्तर में उसे प्रेम में रुचि में अन्तर में न आवे और राग का, मन्द कषाय का, मन्द भाव (का) भले कण हो, उसका आदर आवे तो उस मिथ्यात्व में अनन्त भव की शक्ति है, उसने उत्पन्न की है।

भगवान आत्मा एक-एक गुण की अचिन्त्यता और अपरिमितता और बेहद स्वभाव - ऐसे अनन्त गुण का एक स्वरूप भगवान आत्मा जो मुक्तस्वरूप, शुद्धस्वरूप, एकरूप, अभेदरूप, उसकी अन्तरदृष्टि होने पर अनन्त भव के भाव का नाश (होता है)। एक परिमित रागादि थोड़ा रहा, उसके एकाद दो भव हो - ऐसा परिमित दोष रहा। अपरिमित मिथ्यात्व का दोष, अपरिमित अनन्त आनन्द के स्वभाव के आदर में अपरिमित दोष का नाश हुआ। आहा.. ! यह तो रात्रि में जरा-सा आया था न कि व्यवहार का उपदेश उसे समझाओ। अरे.. ! भगवान ! भाई ! व्यवहार किसे कहना ? बापू ! आहा..हा... !

यह राग की मन्दता की क्रिया हो परन्तु उसके प्रेम में पड़ा है कि यह मैं ठीक करता हूँ, यह मेरे हित के मार्ग में हूँ, वहाँ हित का मार्ग जो भगवान आत्मा - ऐसा शुद्ध भगवान परमानन्द की मूर्ति, उसमें से हित का पन्थ निकलता है; राग में हित का पन्थ नहीं है।

आहा..हा... ! समझ में आया ? वह स्वभाव ही स्वयं बेहद है, अचिन्त्य है। भगवान आत्मा का एक-एक स्वभाव अपरिमित है। अपरिमित अर्थात् परिमित - हद नहीं, बेहद स्वभाव, एक-एक गुण का बेहद स्वभाव। ओ..हो.. ! ऐसा पूर्ण भगवान जिसे अनादर में वर्ते और अकेले राग के कण या निमित्त के आदर में पड़ा हो, वह पूरे भगवान को पहलू से खिसक गया है और विकार तथा संयोग के पहलू में खड़ा रहा है।

न्याय से देखोगे न ? बापू ! यह कहीं कोई समाज अभी अच्छा कहे - ऐसा नहीं, दुनिया अच्छा कहे कि आहा..हा... ! अद्भूत भाई इसका ! यह कोई वहाँ अभी डाले ऐसा नहीं और दुनिया निन्दा करे, प्रतिकूलता हो, वह कोई अन्दर नुकसान नहीं करती। आहा..हा... ! दुनिया माने, न माने उसके साथ स्वभाव और विभाव का सम्बन्ध नहीं है। दोनों के साथ कहा, हाँ ! समझ में आया ?

यहाँ तो कहते हैं कि सम्यग्ज्ञानी होकर फिर दृढ़ चारित्र लीजे। सम्यग्ज्ञानी का अर्थ अपरिमित भगवान आत्मा जिसके प्रेम में पड़ा, जिसके प्रेम में रुचि में पड़ा, उसे इस राग के प्रेम की कट अवस्था हो गयी, उसके साथ कट्टी की। ऐसा जो सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान अपरिमित अनन्त गुण का आदर करनेवाला और अपरिमित मोक्ष की पर्याय का कारण, उसे प्रकट करके... यह राग थोड़ा परिमित दोष शेष रहता है, उसमें यह स्थिरता का अंश इस और प्रकट करके और उसके ऐसे बारह व्रत के विकल्प, उसे शुभभाव उस भूमिका में ऐसे आते हैं, यह उसकी व्याख्या चलती है। कहो, समझ में आया इसमें ?

मुमुक्षु :- ... उपोद्घात ...

उत्तर :- उपोद्घात भाई ! व्रत का अर्थ कि जिसमें स्वरूप अपरिमित ज्ञानानन्द दृष्टि ज्ञान में जमाई है; भ्रम मिटाकर राग की एकता मिटी है; राग की एकता मिटकर जो राग रह गया है; अब आत्मा की ओर की स्थिरता के अंश को प्रकट करके, पंचम गुणस्थान... उस भूमिका में ऐसे बारह व्रत के शुभ विकल्पों की मर्यादा होतीहै, उसकी बात की जाती है। निश्चय दृष्टि और निश्चय अंश की स्थिरता (हुई है), उस भूमिका में ऐसे बारह व्रत के शुभराग का विकल्प है, उसे व्यवहारचारित्र कहा जाता है; परन्तु निश्चय अन्दर स्थिरता है, इस कारण उसे उपचार से

सम्यक्चारित्रपना कहने में आया है। आहा..हा... !

पूरी दुनिया विरोध करे, इस कारण विभाव उत्पन्न होता है – ऐसा नहीं है और सारी दुनिया हाँ, प्रशंसा करे तो इस स्वभाव को लाभ होता है – ऐसा नहीं है। कहो, ठीक है ? पूरी दुनिया प्रशंसा करे और विभाव की एकता का भाव जिसे पड़ा है, उसे जरा भी नहीं आत्मा का लाभ नहीं है। समझ में आया ? भाई ! क्या होगा इसमें ? आहा..हा... ! यह अणुव्रत (का वर्णन) चलता है। अणुव्रत किस भूमिका में होते हैं, कैसी भूमिका हुई हो, उसे ऐसे अणुव्रत होते हैं – उसका यह उपोद्घात चलता है। समझ में आया ? आहा..हा... ! यह परिमित दोष जो है, उसमें भी स्थिरता का अंश प्रकट करके ऐसे विकल्प होते हैं, वह भी अभी इतना दोष है, परन्तु तीव्रता का कषाय चड़ा है और स्थिरता किंचित् अंश आयी है, इस कारण ऐसे व्रत को व्यवहार से सम्यक्चारित्र कहा जाता है। ऐसा है। समझ में आया ?

मुमुक्षु :– ... आदरने को करे न !

उत्तर :– कहा जाता है, आदरने को करे, पाले, व्यवहानय से सब कहा जाता है, परन्तु उसका परमार्थ क्या ? ऐसे विकल्पों की मर्यादा की हद, मर्यादित दोष, स्वरूप का भान होने के बाद अमर्यादित दोष तो रहा नहीं, अपरिमित दोष तो रहा नहीं; परिमित-मर्यादित दोष-राग रहा, उसका फल भी संसार का मर्यादितपना आना इतना बस ! अब उसमें भी जब स्वरूप तरफ की स्थिरता जहाँ अंश विशेष हुई तो उसे ऐसे मर्यादि दोष में भी मर्यादित राग की हद ऐसी हो जाती है। समझ में आया ? दुनिया मानों या न मानों, सत्य तो यह है। समझ में आया ? सत् को कहीं आँच है नहीं।

यहाँ ग्रन्थकार भी ऐसा कहते हैं – सम्यग्ज्ञानी होकर फिर सम्यक्चारित्र (होता है)। इसलिए पहला दोष महान मिथ्यात्व और अज्ञान है, उसे मिटा, फिर सम्यग्दर्शन हुआ, फिर यह... ऐसी बात करते हैं। तो यह पहला दोष जो महान है, वह मिटा नहीं, मिटाने की आवश्यकता मानी नहीं; मिटे कैसे- इसकी विधि ख्याल में नहीं और यह अणुव्रत और महाव्रत के परिणाम ले -इसका अर्थ क्या ? समझ में आया ? भाई ! आहा..हा... ! अरे.. ! अनन्त निगोद और नरक के भव के अभाव स्वभावरूप भगवान आत्मा का जहाँ अन्तर में स्वसन्मुख

की रुचि की नहीं और जिसमें अनन्त नरक, निगोद के भव (करने की शक्ति है, उसका सेवन करता है)। अनन्तानुबन्धी अनन्त अर्थात् मिथ्यात्व उसके साथ सम्बन्ध करनेवाली कषाय। अर्थात् स्वरूप का अनादर और पुण्य-पाप तथा संयोग का एकत्वबुद्धि से आदर, उसके पाप की हद क्या ? भाई ! उसमें अनन्त-अनन्त भव पड़े हैं, भाई ! वह मिथ्यात्व स्वयं ही अनन्त भवस्वरूप है, अनन्त भवरूप है। भगवान आत्मा अनन्त भव के अभावस्वरूप है। आहा..हा... ! समझ में आया ?

यह तो रात्रि में जरा सुना था न ? भाई ! वह भी क्या करे, प्रभु ! यह क्या करता है ? अरे.. ! भाई ! ऐसा कि ये तो श्वेताम्बर में से आये हैं न, इसलिए यह इन्हें व्यवहार का पता नहीं होता। यह प्रभु ! व्यवहार क्या है, कैसे है, बापू ! उसके ज्ञान की कौन-सी बात विचक्षण अलग है। आहा... !

यहाँ तो ग्रन्थाकार कहते हैं कि सम्यग्ज्ञानी हो अर्थात् सम्यग्दृष्टि होकर, यह तो पहले हो गया है; फिर व्रत होते है, क्योंकि अभी स्वरूप में स्थिरता न जमे, तब तक उसे बारह व्रत का विकल्प नहीं होता और विशेष स्थिरता नहीं जमें, तब तक उसे पंच महाव्रत का विकल्प नहीं होता; इसलिए उसकी भूमिका में स्थिरता की शान्ति के लिये जहाँ बढ़ता है, उसे अंश में जहाँ बढ़ा, उसे बारह व्रत के, अणुव्रत के भाव होते हैं। विशेष स्थिर हुआ उसे मुनि के अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प होता है। यह उसका वर्णन-व्यवहार का जो स्वरूप है, है, ऐसा होता है, उसका वर्णन करते हैं। कहो ! यह दोष, इसलिए यह लाभ करे - ऐसा कहेंगे। सब व्रत शिक्षा देते हैं गुण को, गुण करते हैं गुण को, यह अपेक्षा है। यह ऐसी राग की मन्दता जहाँ है, वहाँ अन्दर लाभ की स्थिरता का अंश जगा है - ऐसा (कहना चाहते हैं)। नहीं तो व्रत को तो ऐसा कहेंगे, लो ! गुणव्रत और शिक्षाव्रत आते हैं न ? उनकी व्याख्या समझना चाहिए न बापू ! समझ में आया ?

यह ११ का पूर्वार्ध (हुआ)। यह पाँच अणुव्रतों की व्याख्या हो गयी। समझ में आया ? छट्ठे दिशाव्रत की व्याख्या हो गयी। यह सातवें की चलती है, हाँ ! देशावगाशिक छठवें में आजीवन दिशाओं की मर्यादा करनी कि इतने से बाहर मुझे नहीं जाना। एक राग की मन्दता की

निमित्त की यह सब व्याख्या है। राग की उग्रता – बहु ऐसा जाऊँ... उस राग को मन्द करने का एक प्रकार है, परन्तु वह राग जिसमें नहीं है – ऐसे (स्वभाव) सन्मुख की दृष्टि बिना ऐसे राग की मन्दता के विकल्प व्यवहाररूप भी यथार्त नहीं होते। समझ में आया ?

मुमुक्षु :– सिर बाँधकर यह बात है।

उत्तर :– सिर बाँधकर बात है। आहा..हा... ! तब कोई कहे भी अकेला भले करे। किसने मना किया ? हो तो भले हो, परन्तु भाई ! वहाँ मिथ्यात्व के पाप के साथ जरा पुण्य बँधेगा। राग की मन्दता के मिथ्यात्वसहित के पाँच अणुव्रत, बारह व्रत हो परन्तु यह मिथ्यात्व का जो अनन्त पाप है, जिसकी शक्ति में अनन्त निगोद के भव करने की ताकत है; भाई ! उसमें राग की मन्दता उसे क्या करेगी ? एक–दो भव कोई स्वर्गादिक के मिलें – उससे क्या ? उससे क्या ? उसके बाद भी निगोद और नरक में, भाई ! उसकी पीड़ा की अपरिमितता... अरे.. ! जिसने भगवान को नहीं जाना और जिसने विकार–उसके विरोधी विकार का आदर किया, उसके फल में कदाचित् राग मन्द हो, स्वर्ग मिले परन्तु उसकी परम्परा से दूसरे, तीसरे भव में वह नरक और निगोद ही जाएगा। आहा..हा... ! और त्रस की स्थिति कितनी ? एक हजार, दो हजार सागर। त्रस में कितना रहे ? दो हजार सागरोपम। भाई ! इस दो हजार सागरोपम के त्रस के काल में त्रस और स्थावर के भव का भाव ऐसा मिथ्यात्व, उसका यदि अभाव उसमें नहीं करे तो त्रसकाल पूरा होकर निगोद में – एकेन्द्रिय में जाएगा।

यह मिथ्यात्व मिटाकर सिर आत्मामें से ऊँचा करना है, बाहर के साथ बात नहीं कि यह दुनिया ऐसा कहेगी और दुनिया वैसा कहेगी। ओ..हो... ! भारी व्रत पाले, महाव्रत लिये और अणुव्रत पाले। भाई ! बाहर के लोग महिमा करें, इससे कहीं अन्दर में गुण का लाभ नहीं होता और कदाचित् दुनिया की कीमत में, ख्याल में वह सच्ची चीज़ न आवे, उससे कहीं यहाँ नुकसान हो जाता है (–ऐसा नहीं है)। समझ में आया ? दुनिया की नजर कितनी ? उसकी दृष्टि कितनी कि उससे अभिनन्दन लेना ? आहा..हा... ! उससे अच्छापना (लेना) ? किसके पास से अच्छापना ? परन्तु वह कहाँ अच्छा है तो अच्छापना तुझे मनावे ? आहा..हा... ! कहो, भाई ! (इन्हें) बहुत प्रेम है। क्यों भाई ! आहा..हा... ! आजीविका थोड़ी हो, बहुत हो;

मान थोड़ा हो, बहुत हो – उसके साथ आत्मा को कोई सम्बन्ध नहीं है। भाई ! लड़के – लड़कियाँ हों, माननेवाले हों, नहीं माननेवाले हों; शत्रु हो, मित्र हो – उसके साथ भगवान आत्मा को कोई सम्बन्ध नहीं है, हाँ ! जरा भी सम्बन्ध नहीं है। आहा..हा... ! जहाँ राग के साथ सम्बन्ध नहीं तो फिर राग के निमित्तो के साथ तो सम्बन्ध कहाँ था ? समझ में आया ? आहा... ! तत्त्वज्ञान किसे कहें ? बापू ! आहा..हा... !

कहते हैं, ऐसे तत्त्वज्ञानपूर्वक ऐसे छह व्रत होते हैं। उनकी व्याख्या हो गयी। अब यह सातवें की व्याख्या है। सात का उपोद्घात हुआ, लो ! यह रात्रि के कारण हुआ। अरे.. ! भगवान ! क्या करता है कहा यह ? भाई ! तूने मार्ग सुना नहीं है, बापू ! यह भव के छेद (अभाव) का भाव सुना नहीं है, भाई ! और भव का अभाव करने की चीज़ क्या है और अनन्त भव क्यों हुए – किया है यह दोनों बातें सुनी नहीं, भाई ! आहा..हा... ! समझ में आया ? अब ११ वां आया, लो !

देशव्रत (देशावगाशिक) नामक गुणव्रत का लक्षण

ताहुमें फिर ग्राम गली, गृह बाग बजारा;
गमनागमन प्रमाण ठान अन, सकल निवारा।।१२।।

(पूर्वार्द्ध)

अन्वयार्थ :- (फिर) फिर (ताहुमें) उसमें (कित्हीं प्रसिद्ध) प्रसिद्ध (ग्राम) गाँव (गली) गली (गृह) मकान (बाग) उद्यान तथा (बजारा) बाजार तक (गमनागमन) जाने-आने का (प्रमाण) माप (ठान) रखकर (अन्य) अन्य (सकल) सबका (निवारा) त्याग करना (उसे देशव्रत अथवा देशावगाशिक व्रत कहते हैं)।

भावार्थ :- दिग्व्रत में जीवनपर्यन्त की गई जाने-आने के क्षेत्र की मर्यादा में भी (घड़ी,

घण्टा, दिन, महीना आदि काल के नियम से) किसी प्रसिद्ध ग्राम, मार्ग, मकान तथा बाजार तक जाने-आनेकी मर्यादा करके उससे आगे की सीमा में न जाना सो देशव्रत कहलाता है।।११।। (पूर्वार्द्ध)

ताहुमें फिर ग्राम गली, गृह बाग बजारा;

गमनागमन प्रमाण ठान अन, सकल निवारा।।१२।।

जो कोई आजीवन मर्यादा की हो (कि) अमुक (मर्यादा के) बाहर नहीं जाना; उसमें भी प्रतिदिन थोड़ी-थोड़ी मर्यादा कम करे, उसका नाम यह देशावकाशिक (देशव्रत) कहा जाता है।

'**अन्वायर्थ - फिर उसमें (किसी प्रसिद्ध) गर, गाँव,...**' कि भई इस गाँव में मुझे नहीं जाना, 'मुम्बई' या अमुक-अमुक बड़े-बड़े प्रसिद्ध हों, '**गाँव, गली, मकान, बाग तथा बाजार तक जाने आने का माप रखकर...**' कि यहाँ तक जाना और यहाँ तक नहीं जाना। इतनी अन्दर राग की मंदता का कारण है इसमें। समझ में आया ? जाने-आने की क्रिया का यहाँ सम्बन्ध नहीं है। वह क्रिया जाने-आने देह की है, परन्तु उसमें ऐसा जो ऐसे जाने-आने पर तृष्णा का तीव्र राग (है, उसे घटाने की बात है)। स्वरूप की दृष्टि होने पर भी... स्वरूप कहीं जाता नहीं, आता नहीं, फिरभी जो विशेष ममता का अंश था कि ऐसे यहाँ जाऊँ - उतना घटाने के लिए सदा इतना प्रत्याख्यान करता है। '**अन्य दूसरे स्थानों का त्याग करना, उसे देशव्रत अथवा देशावगाशिकव्रत कहेत हैं।**'

मुमुक्षु :- सदा यह करे ?

उत्तर :- हाँ, सदा।

'**भावार्थ :- दिग्व्रत में जीवनपर्यन्त की गयी जाने-आने की क्षेत्र की मर्यादा में भी (घड़ी, घण्टा, दिन, महिना, आदि काल के नियम से) किसी प्रसिद्ध गाँव, मार्ग,...**' यह रास्ता ऐसा। अमुक रास्ता। चारों और रास्ता होता है न ? यह 'मकरपरा' का रास्ता यह अमुक

हाथी का रास्ता। '**मकान और बाजार तक जाने-आने की मर्यादा करके, उससे अधिक मर्यादा में न जाना, वह देशव्रत कहलाता है।**' यहाँ नीचे लीखा है कि हिंसादि को लोक में भी पाप माना जाता है; उसका इस व्रत में एकदेश त्याग किया जाता है और इस कारण यह अणुव्रत कहलाता है। वरना यह सम्यग्दर्शन के बिना नहीं होता। इन तीनों जगह यही भाषा लिखी है। अब, १२ वाँ उत्तरार्द्ध और १३ वाँ।

अनर्थदंडव्रत के भेद और उनका लक्षण

काहूकी धनहानि, किसी जय हार न चिन्तै;
देय न सो उपदेश, होय अध वनज कृषि तै॥१२॥
(उत्तरार्द्ध)

कर प्रमाद जल भूमि वृक्ष पावक न विराधै;
असि धनु हल हिंसोपकरण नहिं दे यश लाधै।
राग-द्वेष-करतार, कथा कबहूँ न सुनीजै;
और हु अनरथ दंड, हेतु अध तिन्हैं न कीजै॥१३॥

अन्वयार्थ :- १ - (काहूकी) किसीके (धनहानि) धन के नाश का, (किसी) किसी की (जय) विजय का (अथवा) (हार) किसी की हार का (न चिन्तै) विचार न करना (उसे अपध्यान: अर्थदंडव्रत कहते हैं।) २ - (बनज) व्यापार और (कृषी तैं) खेती से (अघ) पाप (होय) होता है; इसलिये (सो) उसका (उपदेश) उपदेश (न देय) न देना (उसे पापोपदेश-अनर्थदंडव्रत कहा जाता है।) ३ - (प्रमाद कर) प्रमाद से (विना प्रयोजन) (जल) जलकायिक, (भूमि) पृथ्वीकायिक, (वृक्ष) वनस्पतिकायिक, (पावक) अग्निकायिक (और वायुकायिक) जीवों का (न विराधै) घात न करना (सो प्रमादचर्या-अनर्धदंडव्रत कहलाता है) ४ - (असि) तलवार, (धनु) धनुष्य, (हल) हल (आदि) (हिंसोपकरण)

हिंसा होने में कारणभूत पदार्थों को (दे) देकर (यश) यश (नहि लाधै) न लेना (सो हिंसादान-अनर्थदंडव्रत कहलाता है।) ५ - (रागद्वेष-करतार) राग और द्वेष उत्पन्न करनेवाली (कथा) कथाएँ (कबहूँ) कभी भी (न सुनीजै) नहीं सुनना (सो दुःश्रुति अनर्थदंडव्रत कहा जाता है।) (और हु) तथा अन्य भी (अघहेतु) पाप के कारण (अनरथ दंड) अनर्थदंड है (तिन्है) उन्हें तथा अन्य भी (न कीजे) नहीं करना चाहिए।

भावार्थ :- किसी के धन का नाश, पराजय अथवा विजय आदि का विचार न करना, सो पहला अपध्यान-अनर्थदंडव्रत कहलाता है।१

(१) हिंसारूप पापजनक व्यापार तथा खेती आदि का उपदेश न देना, वह पापोपदेश-अनर्थदंडव्रत है।

(२) प्रमादवश होकर पानी ढोलना,जमीन खोदना, वृक्ष काटना, आग लगाना-इत्यादि का त्याग करना अर्थात् पाँच स्थावरकाय के जीवों की हिंसा न करना उसे प्रमादचर्या अनर्थदंडव्रत कहते हैं।*

(३) यश प्राप्ति केलिये, किसी के माँगने पर हिंसा के कारणभूत हथियार न देना सो हिंसादान-अनर्थदंडव्रत कहलाता है।

(४) राग द्वेष उत्पन्न करनेवाली विकथा और उपन्यास या श्रृंगारिक कथाओं के श्रवण का त्याग करना, सो दुःश्रति अनर्थदंडव्रत कहलाता है।

---

१. अनर्थदंड दूसरे भी बहुत से हैं। पाँच तो स्थूलता की अपेक्षा से अथवा दिग्दर्शनमात्र हैं। वे सब पापजनक हैं इसलिये उनका त्याग करना चाहिए। पापजनक निष्प्रयोजन कार्य अनर्थदंड कहलाता है।

निश्चयसम्यग्दर्शन–ज्ञानपूर्वक, पहले दो कषायों का अभाव हुआ हो उस जीवको सच्चे अणुव्रत होते हैं; निश्चयसम्यग्दर्शन न हो, उसके व्रत को सर्वज्ञदेवने बालव्रत कहा है।

नोंध :– यह पाँच (अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और परिग्रह परिणाम) अणुव्रत है; जिस हिंसादिक को लोक में भी पाप माना जाता है, उसका इन व्रतों में एकदेश (स्थूलपने) त्याग लिया गया है। और उसी कारण से वह अणुव्रत कहे जाते है।

काहूकी धनहानि, किसी जय हार न चिन्तै;
देय न सो उपदेश, होय अध वनज कृषि तै॥१२॥
कर प्रमाद जल भूमि वृक्ष पावक न विराधै;
असि धनु हल हिंसोपकरण नहिं दे यश लाधै।
राग-द्वेष-करतार, कथा कबहूँ न सुनीजै;
और हु अनरथ दंड, हेतु अध तिन्हैं न कीजै॥१३॥

यह आठवाँ अनर्थदण्डव्रत है। सम्यग्दृष्टि को स्वरूप का आश्रय, दृष्टि होने पर भी, जितनी अस्थिरता का भाग रहता है, उसमें भी घटाने के प्रमाण का यह अधिकार है। समझ में आया ? धर्मी जीव, अणुव्रतधारी जीव, स्त्री हो या पुरुष हो, उसे (ऐसा भाव आता है)।

'**अन्वयार्थ :- किसी के धन के नाश का...**' कि इसके धन का नाश हो जाए ! इसको पचास लाख - करोड़ है, मेरे पास पाँच हजार, दस हजार है, उसका नाश होवे तो मैं कुछ गिनती में आऊँ - ऐसा विचार श्रावक नहीं करता। आहा..हा... ! समझ में आया ?'**किसी के धन के नाश का...**' उसके पुण्य-प्रमाण हो, यहाँ पुण्य-प्रमाण है; है, वह आत्मा को कुछ लाभकर्ता तो है नहीं। कहो, भाई ! आहा..हा... !

मुमुक्षु :- ...

उत्तर :- उसका अपने कुछ नहीं, यहाँ तो अपने...

मुमुक्षु :- किसी की बिगड़ी बनाना।

उत्तर :- किसी का बिगड़े-बिगड़े नहीं। उसका विचार यह किस लिए रखे ?

मुमुक्षु :- अपना समझता है न ?

उत्तर :- अपना काम है और दूसरे को क्या काम है यहाँ ? ऐ..ई.. ! उसके काले बाजार के थे और वे लूटे तो अच्छा किया, भाई ! तुझे क्या काम है ? बापू ! उसे दुःख होता है या नहीं ? उसे तो दुःखता है न ? भले काले बाजार के थे और ले गया, परन्तु उसका मन दुःखता

है या नहीं ? कितने ही तो मर जाते हैं। हाय... हाय... एक तो (धन) गया और फिर प्रतिष्ठा खुल्ली पड़ गयी कि वे तो कालाबाजार के थे। भाई ! उसमें लाभ क्या है ? भाई ! आहा..हा... !

वह सत्या क्या ? आग्रहक थे न ? क्या कहलाता है ? सत्याग्रह। दुकानो पर बैठते। सत्याग्रह (करे) तो दुकान के लोग बेचारे कितने ही व्यापारी ऐसे होवें कि पाँच हजार की पूंजी से सब चलाते हों। उसमें और उसमें से, गिनाता हो बाहर में लाख, दो लाख; परन्तु उसमें और उसमें चलाता हो और पाँच सो, दो हजार पैदा होते हों। आते हो, वे आकरबैठे हो, पाँच दिन बैठे तो उसे नुकसान हो, वह मुश्किल से उसके उपर हो इसलिए वे ऐसे... होते ऐसा मैने देखा है, हाँ ! अन्दर बेचारा बहुत दु:खी होता है। अर..र..र.. ! हमारा प्रसिद्ध हो गया। हमारी पूंजी बाहर मेंकहलाये... हमारीपूंजी तो है, वह हमारे ख्याल में है, परन्तु इस प्रकार हमारा निभाव (होता है), उसमें वह सामने जाकर बैठे, धन्धा चलने न दे। ऐसे सत्याग्रही थे। समझ में आया ? यह सब हमने देखा है, और उस समय विचार भी आये हों, उसका खुल्ला पड़ा। जहाँ छह महिना, महिना, दो महिना वहाँ बैठे तो खुल्ला पड़ जाए कि उसके पास पूँजी नहीं लगती है, यह तो इसी-इसी में बैठे तो निभे, वरना आजीविका नहीं। पैसे-बैसे ज्यादा कहलाते हैं, वे है नहीं। वह बेचारा दु:खी, उसे बहुत आर्तध्यान होता, हाँ ! समझ में आया ? ऐ..भाई ! आहा..हा... ! जगत की विचित्रता ! धर्मी को किसी के धन के नाश का विचार किसलिए ?

'**किसी की विजय का, किसी की हार का...**' जीतना और हारना। यह जीते तो ठीक। भाई ! तुझे क्या काम है ? जीते या हारे, वह तो उसके पुण्यानुसार होगा। वह क्रिया उसके कार्यकाल में होने की हो वह होगी। तू जीत-हार में हर्ष-शोक करके स्वयं को पाप किसलिए बाँधता है ? धर्मी ऐसे जीत-हार का (विचार नहीं करता)। दूसरे की जीत हो और इसकी हार हो, यह पापी है, उसकी हार हो और यह पुण्यवन्त है, उसकी जीत हो - ऐसा विचार नहीं करना। आहा..हा... !

परिमित दोष में भी कितनी मर्यादा है उसकी। वह कम होता है - ऐसा नहीं, ऐसा नहीं, ऐसा नहीं होता। अपने को कुछ प्रसिद्ध करके उसकी ढंकी हुई लाज-इज्जत को खुला कर

देना... समझ में आया ? अपना काम नहीं, अपना काम नहीं। उसके पास कहाँ पूंजी थी ? देखो तो सही, एक ऐसी जाँच तो कराओ, मुफ्त के बड़े-बड़े घर कहलाते है, घर में कुछ नहीं, उसे ऐसा है, बापू ! ऐसे विचार ऐसे विकल्प मर्यादित दोषवाला समकिती भी नहीं करता। आहा..हा... ! समझ में आया ?

'**उसे अपध्यान अनर्थदण्डव्रत कहते हैं।**' अपध्यान। ये परिणाम आये न अकेले ? '**विचार न करना...**' अर्थात् मन आया न, मन ? '**व्यापार और खेती से पाप होता है, इसलिए उसका उपदेश न देना...**' यह वाणी का आया। वह मन का आया था। मन में ध्यान (करे)। आहा..हा... ! फिर आगे बढ़ा वह वाणी आयी। देखो ! अन्दर में घूंटता हो, फिर वाणी कहता है। समझ में आया ?

'**(२) व्यापार और खेती से पाप होता है, इसलिए उनका उपदेश न देना, (उसे पापोपदेश अनर्थदण्डव्रत कहते हैं।)**' आहा... ! अरे ! वीतराग मार्ग की मर्यादा में उसे ले जाना, वह अलौकिक मार्ग है, यह लौकिक के साथ मेल खाये - ऐसा नहीं है। ऐसी बात है, भाई ! समझ में आया ? आहा.. ! देखो ! 'टोडरमल' को वह नुकसान (हुआ परन्तु) बोले नहीं, हाँ ! कि उसने ऐसा किया है, वरना राजा तो मानता। मुझे क्या ? आयु पूर्ण हुई। अपने को उसे कहाँ दोष देना (कि) उसने शिव की मूर्ति डाली थी। समझ में आया ? जैसा होना हो, वैसा होता है; अपने को, किसी को नुकसान हो, वह अपने से हो नहीं। समझ में आया ?

'**(३) (प्रमाद कर) प्रमाद से प्रयोजन बिना...**' यह पानी का ढोलना। वे धोते हैं न ? देखो न यह क्या कहलाता है तुम्हारे यह ? नल खुले (हों) वह फव्वारा। यह व्यर्थ का फव्वारा खुल्ला रखते हैं। कितना (चला जाता है)। नल खुल्ला रखते हैं। पानी चाहिए हो दो शेर, खुला रखे तो पचास मण चला जाए सवेरे से शाम तक में। ऐसे बिना प्रयोजन पानी नहीं ढोले बापू ! वह जीव है। धर्मी को राग की मन्दता के व्रत परिणाम में ऐसे भाव नहीं होते।

'**पृथ्वीकायिक...**' बिना कारण पृथ्वी को नहीं खोदता। समझ में आया ? पत्थर के टूकड़े पड़े हो और बैठा-बैठा तोड़े और टूकड़े करे और खेले... जीव है, असंख्य जीव हैं। बिना प्रयोजन वह नहीं करता। समझ में आया ? इसमें है या नहीं ? ऐसा बनाया है या नहीं ? इसमें

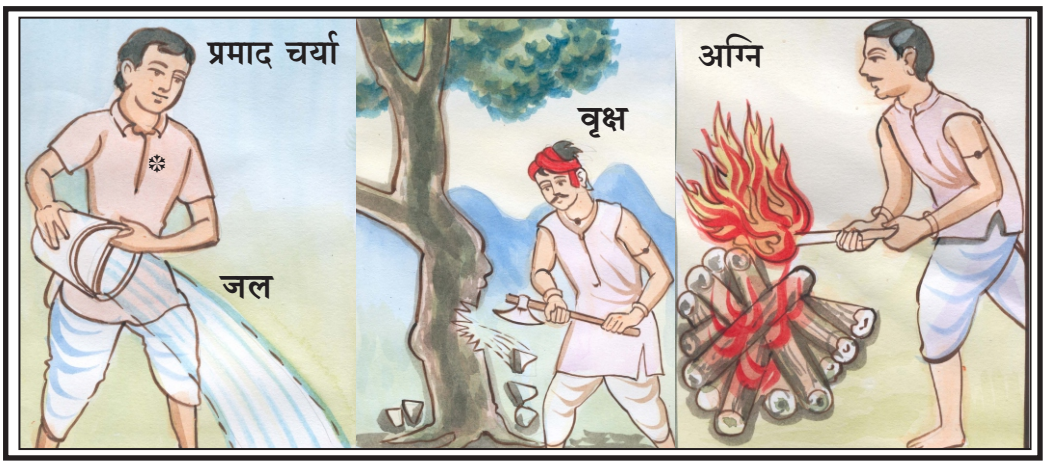

है, चित्र में होगा सब, थोड़ा बहुत देखो ! है यहाँ, हाँ ! पानी ढोलता है, देखो ! बहुत पानी ढोलता है। वह वनस्पति काटता है, वह अग्नि (जलाता है)। फिर हिंसादान के अधिकरण वह बाद में आयेगा। कहो, समझ में आया ?

'**वनस्पतिकायिक...**' कितने ही होते है न ? बिना प्रयोजन, हाथ में लकड़ी हो और वृक्ष हो तो ऐसे तोड़ता जाए। वृक्ष की डालियों को (तोड़े) परन्तु प्रयोजन क्या है ? होशियारी चलानी है ? हाथ में लकड़ी घूमती होवे तो ऐसे करता जाए, वृक्ष के वो (डालियाँ) होवे वे टूटते जाए, यह तो कुछ भान नहीं होता। बिना प्रयोजन के अनर्थदण्ड के ऐसे परिणाम धर्मी नहीं करता।

'**अग्निकायिक...**' ऐसे अग्नि को बिना प्रयोजन जला दे, दियासलाई रख दे। रखते हैं न ? किसी के अनाज का भूसा जल जाता हैं, तिल जल जाता हैं, अमुक हो जाए अथवा ... दियासलाई व्यर्थ की डालकर कहीं घास पड़ी हो, वहाँ डाल दे।

'**वायुकायिक...**' नहीं नष्ट करता। '**ऐसे जीवों का घात नहीं करना, वह प्रमादचर्या अनर्थदण्डव्रत कहलाता है।**' और

'**(४) तलवार...**' ऐसे उपकरण अपने रखो, दुनिया माँगे तो दे तो यश मिलेगा – ऐसे भाव समकित को नहीं होते। तलवार रखो, तलवार, जरूरत पड़े तो उसे दे। जाओ, 'जूनागढ़'

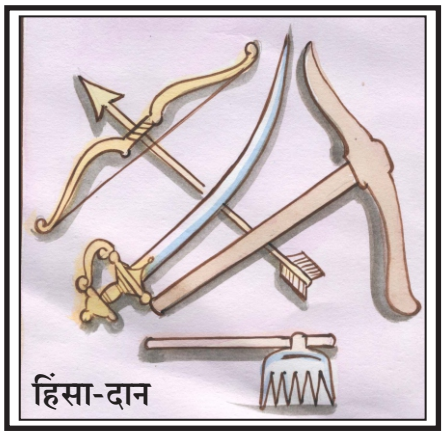
हिंसा-दान

में लड़ाई है, हमारी तलवार ले जाओ। समझ में आया ? पता है न ? हुआ था न भाई ! एक व्यक्ति ने उसकी तलवार दी उसे, जाओ। अरे..! भाई ! ओ..हो..! उसने तलवार दी, लो ! लड़ाई करने जाता है, जाओ हम अनुमोदन करते हैं, लो ! हम तलवार देते हैं, तुम जाओ, लो ! हमारी तलवार ले जाओ। श्रावक को आत्मा में एक राग का कण करने योग्य नहीं - ऐसा माना है, वहाँ अस्थिरता आती है, उसमें अणुव्रतधारी को तो पंचम गुणस्थान अवस्था है, शान्ति बहुत है; इस कारण उसे तो कषाय की मन्दता बहुत हो गयी है। उसे ऐसे तलवार आदि (रखने के भाव नहीं होते)। समझ में आया ?

'**धनुष...**' लो ! जाओ, धनुष ले जाओ। मेरे पास दस धनुष है, लो ! '**हल...**' खोदने का। '**हिंसा होने में कारणभूत पदार्थों को देकर यश नहीं लेना...**' समझ में आया ? ऐसा होता है न घर में ? रखो कुदाली पाँच, दस-दस। कोई पीसने जाता है, हरितकाय अमुक छड़ी रखो अधिक, अमुक छड़ी रखे। हरित करनी हो न ? यह आचार ...ज्येष्ठ महिने में (बनाते हैं)। मागे तो दे सकें। ज्येष्ठ महिने में अचार होता है न ? आम का और हरी मिर्च और अमुक का ऐसा आधा मण - आधा मण, मण-मण, दो-दो मण बनाते है, ले जाओ, मेरे यहाँ से एक छूरी ले जाओ, बहुत बड़ी है, बड़ी ऐसे फटाफट काम करे, डाल-डाल काटते हैं नहीं ? क्या कहलाता है ? गरमर ... यह तो पुराना आया फिर लो ! डाली को गरमर बैठते है न ! वह बोरी डालकर, उलटी वह थेली डालकर ऐसे ऐसे करें।

मुमुक्षु :- होशियार होवे न ?

उत्तर :- हाँ, ऐसी काटे। होशियार हो, वह वहाँ बैठे। दूसरों को दे, लो ! करो। अरे..! भाई ! श्रावक है, अणुव्रतधारी है, महाव्रत चारित्र लेने का तो अभिलाषी है। समझ में आया ? नहीं ले सकता, उसकी मर्यादा में उसे ऐसे अनर्थदण्ड के परिणाम नहीं होते। समझ में आया ? '**वह हिंसादान अनर्थदण्डव्रत कहलाता है।**' लो !

'**(राग-द्वेष करतार) - राग और द्वेष उत्पन्न करनेवाली कथायें कभी भी नहीं सुनना...**' समझ में आया ? उपन्यास और श्रृंगारिक (कथायें नहीं सुनना)। करने बैठे... वह बड़ा पाठ बैठता है न ? ऐसी कथा करे और ऐसे लड़ावे, ऐसे मानो अन्दर से। वे राग-द्वेष की कथाएँ हैं। समकिती वीतराग कथा करे या राग-द्वेष करे ? '**राग-द्वेष करनेवाली कथायें कभी भी नहीं सुनना, (वह दु:श्रुति अनर्थदण्डव्रत कहलाता है)।**' खराब सुनना छोड़ देना। '**और अन्य भी (अघ हेतु)...**' अघ अर्थात् '**पाप के कारण (अनर्थदण्ड) अनर्थदण्ड है, उन्हें भी नहीं करना चाहिए।**' लो ! यह सब स्पष्टीकरण आ गया है। समझ में आया ? अर्थ में अपने आ गया है।

नीचे फूटनोट है - '**अनर्थदण्डव्रत दूसरे भी बहुत से हैं। पाँच बताये...**' बनाये हैं, बताया होगा। '**बताया, वह स्थूलता की अपेक्षा से है अथवा दिग्दर्शन मात्र है।**' दिग अर्थात् कथन में थोड़ा बतलाया है, इतना। '**वे सब पापजनक है, इसलिए उनका त्याग करना चाहिए। पापजनक निष्प्रयोजन कार्य को अनर्थदण्ड कहते हैं।**' वह भी निश्चय दर्शन साथ में आया न अन्दर ? यह नीचे तीनों में यह बात है। तीन जगह वही के वही शब्द है। निश्चयसम्यग्दर्शन ज्ञानपूर्वक पहली बात जो उपोद्घात में की वह। प्रथम की दो कषायों का अभाव हुआ हो, उस जीव को सच्चे अणुव्रत होते हैं। निश्चयसम्यग्दर्शन न हो, उसके व्रत को सर्वज्ञदेव ने अज्ञानव्रत कहा है। यह तीसरी बार आया है। यह तीन बार आया है। पहले ९० पृष्ठ पर था, ९२ पृष्ठ पर था और यह है - तीन बार आया। समझ में आया ? जहाँ हो, वहाँ वह डालते हैं। समझ में आया ? भावार्थ में आ गया हो, वह अपने आ गया है।

'**भावार्थ :- (१) किसी के धन का नाश, हार अथवा जीव इत्यादि का निंद्य विचार न करना, वह प्रथम अपध्यान अनर्थदंडव्रत कहलाता है।**

(२) हिंसारूप पापजनक व्यापार तथा खेती आदि का उपदेश न देना, वह पापोपदेश-अनर्थदंडव्रत है।

(३) प्रमादवश होकर पानी ढोलना, जमीन खोदना, वृक्ष काटना, आग लगाना-इत्यादि का त्याग करना अर्थात् पाँच स्थावरकाय के जीवों की हिंसा न करना, उसे

प्रमादचर्या अनर्थदंडव्रत कहते हैं।

(४) यश प्राप्ति के लिये, किसी के माँगने पर हिंसा के कारणभूत हथियार न देना, सो हिंसादान-अनर्थदंडव्रत कहलाता है।

(५) राग-द्वेष उत्पन्न करनेवाली विकथा...' बिना (प्रयोजन के) स्त्री की कथा करे, रानियों की कथा करे, उनके वस्त्रों की करे, उनके अवयवों की करे - यह पाप अनर्थदण्ड है, भाई ! तेरा कुछ प्रयोजन सिद्ध नहीं होता और मुफ्त में पाप बँधता है। **'उपन्यास या श्रृंगारिक कथा आदि सुनने का त्याग करना, वह दु:श्रुति अनर्थदण्डव्रत कहलाता है।'**

मुमुक्षु :- उपन्यास छपावे तो आपत्ति नहीं न ?

उत्तर :- वह तो आजीविका करने के लिये करता है। वह आजीविका के लिये करता है। उसमें अन्दर गप्पे मारे होते हैं। वह तो आजीविका के लिये करे, वह तो उसके खाते में है न उसे। समझ में आया ?

मुमुक्षु :- अर्थात् करने जैसा है ?

उत्तर :- करने जैसा तो कुछ नहीं, रुक जाने का है। देखो ! यह बन्दर का दृष्टान्त आया है न ? तीन, गांधीजी के बन्दर। लिखा है - 'महात्मा गांधीजी' की त्रिवानर मूर्ति। है न ? अपने यहाँ है, हाँ ! अन्दर। है या तो। एक बन्दर मुँह बन्द रखता है ऐसे, बोलो नहीं, एक आँखे बन्द रखता है और एक कान (बन्द रखता है)। झूठ बात सुनना नहीं, झूठ देखना नहीं, झूठ बोलना नहीं। यह है पत्थर की आती है न ? बहुत जगह है, इसमें है। अपने यहाँ है अन्दर। है या नहीं ऊपर ? ऊपर होगा कहीं था अवश्य। तीन बन्दर छोड़ गये थे। लो ! यह आठ व्रत हुए। अणुव्रतधारी श्रावक को पंचम गुणस्थान में दो कषाय के अभाव की भूमिका में ऐसे आठ व्रतों की व्याख्या ग्रन्थाकार ने की है। अब चार की शेष है। बारह व्रत है न ? बारह व्रत।

सामायिक, प्रोषध, भोगोपभोगपरिमाण और अतिथिसविभागव्रत

धर उर समताभाव, सदा सामायिक करिये,
परव चतुष्टयमाहि, पाप तज प्रोषध धरिये;
भोग और उपभोग, नियमकरि ममत निवारै,
मुनिको भोजन देय फेर, निज करहि अहारै।।१४।।

अन्वयार्थ :- (उर) मन में (समताभव) निर्विकल्पता अर्थात् शल्य के अभाव को (धर) धारण करके (सदा) हमेशा (सामायिक) सामायिक (करिये) करना (सो सामायिक-शिक्षाव्रत है;) (परव चतुष्टयमांहि) चार पर्व के दिनों में (पाप) पापकार्यों को छोड़कर (प्रोषध) प्रोषधोपवास (धरिये) करना (सो प्रोषध उपवास शिक्षाव्रत है;) (भोग) एकबार भोगा जा सके ऐसी वस्तुओं का तथा (उपभोग) बारम्बार भोगा जा सके एसी वस्तुओं का (नियमकरि) परिमाण करके-मर्यादा रखकर (ममत) मोह (निवारै) छोड़ दे (सो भोग-उपभोगपरिमाणव्रत है;) (मुनिको) वीतरागी मुनि को (भोजन) आहार (देय) देकर (फेर) फिर (निज आहार) स्वयं भोजन करे (सो अतिथिसविभागव्रत कहलाता है।)

भावार्थ :- स्वोन्मुखता द्वारा अपने परिणामों को स्थिर करके प्रतिदिन विधिपूर्वक सामायिक करना सो सामायिक शिक्षाव्रत है। १ प्रत्येक अष्टमी तथा चतुर्दशी के दिन कषाय और व्यापारादि कार्यों को छोड़कर (धर्मध्यानपूर्वक) प्रोषध सहित उपवास करना, सो प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत कहलाता है। २ - परिग्रह-परिमाण-अणुव्रत में निश्चय की हुई भोगोपभोग की वस्तुओं में जीवनपर्यंत के लिये अथवा किसी निश्चिय समय के लिये नियम करना, सो भोगोपभोगपरिमाण शिक्षाव्रत कहलाता है। ३ - निर्ग्रंथ मुनि आदि सत्पात्रों को आहार देने के पश्चात् स्वयं भोजन करना, सो अतिथिसंविभाग शिक्षाव्रत कहलाता है।।१४।।

'**सामायिक, प्रौषध, भोगोपभोग परिमाण और अतिथि संविभागव्रत**' चार है।

धर उर समताभाव, सदा सामायिक करिये,
परव चतुष्टयमाहि, पाप तज प्रोषध धरिये;
भोग और उपभोग, नियमकरि ममत निवारै,
मुनिको भोजन देय फेर, निज करहि अहारै।।१४।।

चार अणुव्रत। '**मन में निर्विकल्पता अर्थात् शल्य के अभाव को धारण करके...**' समताभाव कब होता है ? जब पुण्य-पाप की रुचि छूटकर वीतरागभाव दृष्टि में बैठा है, उसे स्वभाव सन्मुख में समता का परिणाम प्रकट होता है। समझ में आया ? उसे सामायिक कहते हैं। सम्यग्दर्शन-ज्ञान बिना सामायिक कैसी ? सामायिक तो पाँचवे गुणस्थान की बात है।

शुद्ध चैतन्य है। विकाररहित स्वभाव का अनन्त में आदर नहीं है, उसे समताभाव किस प्रकार प्रकट होगा ? समता का पिण्ड ही आत्मा है। आत्मा अकेला वीतराग रसकन्द है। ऐसी रुचि-दृष्टि हुए बिना वीतरागता का - समता का प्रवाह पर्याय में आयेगा कहाँ से ? समझ में आया ? समकित सामायिक है, सम्यग्ज्ञान सामायिक है। यह व्रत की एक सामायिक है। देशव्रत और सर्वव्रत - ऐसे चार प्रकार की सामायिक है।

सम्यग्दर्शन सामायिक, दर्शनसामायिक यह तो उनमें श्वेताम्बर में आता है। अनुयोग द्वारा में आता है, वह बात होती थी। सम्यग्दर्शनसामायिक - पूरा आत्मा समभाव से भरा है, एक विषम राग का विषय अंश जिसमें नहीं - ऐसे आत्मा की अन्तर सम्यक्-सत्य प्रतीति का भान, वही पूरे समता के पिण्ड का आदर किया - ऐसे सम्यक् परिणाम को सम्यग्दर्शन सामायिक कहा जाता है। समझ में आया ? और ऐसा जो समता - वीतराग स्वभाव आत्मा, निर्दोष आत्मा का ज्ञान, इसलिए ज्ञान भी समतारूप हुआ, वह सम्यग्ज्ञान सामायिक है, सम्यग्ज्ञान सामायिक है। तदुपरान्त यह देशव्रत की सामायिक है। स्वरूप में थोड़ी स्थिरता तो थी, पंचम गुणस्थानवाला है न ? परन्तु विशेष प्रयोग करता है। सामायिक का प्रयोग / अजमाईश करता है कि मैं स्वरूप में स्थिरता कितने अंश रख सकता हूँ - ऐसा एक विकल्प आता है, उसे

व्यवहार सामायिक कहते हैं; स्थिरता होती है, उसे निश्चय सामायिक कहते हैं। समझ में आया ? एक अंश में स्थिरता भी है और एक अंश में विकल्प भी है, यहाँ दो प्रकार है। अणुव्रत के साथ लेना है न ? बारह व्रत लेना है न ? समझ में आया ?

मुमुक्षु :- पाँचवे गुणस्थान में पाँच अणुव्रत तो होते ही है।

उत्तर :- होते ही है। पाँच अणुव्रत हो, उसे साथ होता है। कहो, समझ में आया ? पाँच अणुव्रत तो होते ही है वे।

मुमुक्षु :- बारह व्रत ग्यारह प्रतिमा मैं समा जाते है ?

उत्तर :- समा जाते हैं, आगे बढ़े तो, वरना पाँचवे में बारह व्रत होते हैं। क्या कहलाता है ? दूसरी प्रतिमा। फिर बढ़ता जाता है।

मुमुक्षु :- दूसरी ...

उत्तर :- इससे आगे अधिक होती है। दूसरी नहीं ली। उसका कारण है, उसमें आगे बढ़ जाए। यह बारह व्रत तो पाँचवे (गुणस्थान में) दूसरी व्रत प्रतिमा में भी होते हैं। है न प्रथम दर्शन और दूसरी (व्रत) प्रतिमा, उसमें होती हैं। फिर आगे बढ़ने पर सामायिक सदा कायम करता है। सामायिक तो होती है। बाहर में सब (होता है) परन्तु कायम सामायिक करे - ऐसी एक तीसरी प्रतिमा ... ऐसा। यहाँ तो इतनी ही बात ली है।

'**मन में शल्य के अभाव...**' देखो ! समता कही है न ? शल्य अर्थात् विषमता, मिथ्यात्व। मिथ्यात्व आदि शल्य का अभाव है अथवा नि:शल्य व्रती-व्रती ऐसा होता है, नि:शल्य होता है। उसे मिथ्यात्व का शल्य नहीं होता, निदान का शल्य नहीं होता; यह करूँ, इसका फल (मिले) और माया शल्य नहीं होता, तब उसे व्रत के परिणाम होते है। समझ में आया ? एकदम व्रती हो जाए और अभी शल्य तो पड़े हैं। व्रती कहाँ से हो गया ? शल्य तो पड़ा है कि घूंटता है अन्दर। यह आत्मा ऐसा नहीं परन्तु इस राग में, पुण्य में, पुण्य के फल में प्रेम और रुचि है, यह तो मिथ्यात्व का शल्य तो पड़ा है अन्दर। शल्य मिटे बिना शान्ति आये कहाँ से ? शल्य नहीं गया और फोड़ा मिटे कैसे ? लोहे का अन्दर पड़ा है, फिर ऊपर करे

मरहम-पट्टी परन्तु अन्दर तो सड़न बढ़ती जाती है।

मुमुक्षु :- ...

उत्तर :- हाँ, हाँ, ऊपर चमड़ी आ जाती है, बाहर चमड़ी आ जाती है, अन्दर सड़ी रहती है, गंभीर फोड़ा (हो) ऐसे इसराग की मन्दता की बाहर क्रिया दिखती, अन्दर मिथ्यात्व का बड़ा फोड़ा पड़ा हो। समझ में आया ? इसलिए डोक्टर... गहरा फोड़ा हो न ? वाट डालकर कहाँ तक है, वहाँ तक देखता है, वहाँ से घाव का भरना शुरु होता है या नहीं ? वहाँ से घाव भरना शुरु होता है या नहीं ? - ऐसा देखता है। इसलिए यह चार घूस गया वहाँ से (घाँव) भरना शुरु हो कि नहीं ? यहाँ से मिटता नहीं। जहाँ से शुरु होनीचाहिए, वहाँ से हुई है या नहीं ? ऐसा जाँच करता है। (घाँव को) भरना पड़ेगा भले कल तीन पैठा है भरे हुए घाँव पर। यहाँ अन्दर में घाँव भरा न हो और बाहर से सारी त्वचा एक जैसी दिखे वह अन्दर सड़न है बड़ी।

इसीप्रकार जिसे मिथ्यात्व की सड़न पड़ी है अन्दर, ऊपर से राग की मन्दता की सामायिक और प्रौषध दिखे तो अन्दर सब सड़न पड़ी है। भाई ! ऐसे शल्य ही रहती है। अहा..! दूसरे का कुछ अधिक देखे, वहाँ ऐसा होता है, दूसरे की इज्जत देखे तो ऐसा हो दूसरे की निन्दा होवे तो ऐसा हो, अपनी निन्दा होवे तो ऐसा हो। निन्दा अर्थात्... कौन निन्दा और कौन... करे ? अब सुन न ! ज्ञानस्वरूप आत्मा है - ऐसा जाने बिना, इसका शल्य मिटे बिना इसे अन्दर खदबद खदबद हुआ ही करती है। समझ में आया ? लो ! यह भाई ! तुम्हारे एक के बारह व्रत आये, हाँ ! ऐसा पहला-बहला व्याख्यान आता है, यह छहढाला का। पूराना है न, पुराना है। कहो, समझ में आया ?

'और चार पर्व के दिनों में पापकार्य छोड़कर...' अष्टमी, चतुर्दशी दो और कृष्ण तथा शुक्ल (पक्ष की - इसतरह चार) **'प्रौषध-उपवास करना...'** प्रौषध, उपवास हाँ ! अकेला उपवास नहीं। आत्मा की स्थिरतापूर्वक उपवास। अष्टमी-चतुर्दशी को अधिक मुख्य, मुख्य वह है। चाहे जब हो सकता है। इतना तोकरना ही। इससे अधिक करे, भले करे, परन्तु उसे पंचम गुणस्थान के योग्य इतनी निवृत्ति इसे हो, अधिक हो। कोई अधिक तब कर सकता है,

स्थिरता करता है। वह अधिक... इससे बड़ी है। उस काल में उसे ऐसा प्रकार होता है। '**प्रौषध - उपवास करना, वह प्रौषध-उपवास शिक्षाव्रत है।**' देखा ?

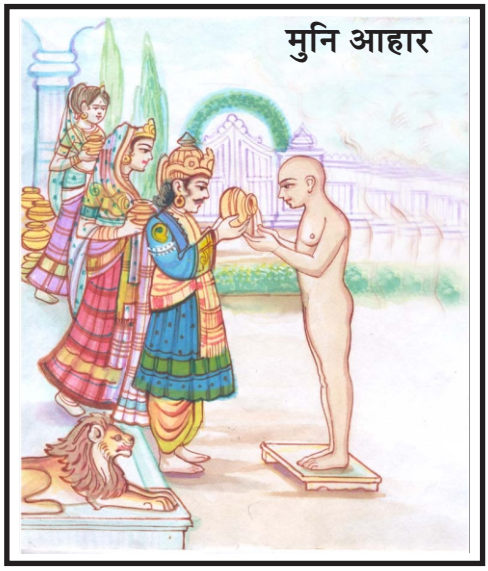

'**एकबार भोगा जा सके - ऐसी वस्तुओं का तथा बारम्बार भोगा जा सके - ऐसी वस्तुओं का...**' एक बार भोगा जा सके – समझे न ? अनाज आदि। बारम्बार – यह गहने, कपड़े आदि। इसका '**परिमाण करके...**' कि भाई इतना ही अनाज अथवा इतने ही कपड़े अथवा ये ही गहने, '**परिमाण करके - मर्यादा रखकर मोह छोड़ दे, वह भोग-उपभोग परिमाणव्रत है।**' लो, समझ में आया ? '**(मुनि को) वीतरागी मुनि को...**' और यह जो श्रावक गृहस्थ आदि पात्र हों, इसमें सब लेना, हाँ ! अकेला ऐसा नहीं। अर्थ में आयेगा, अर्थ में आयेगा। '**निर्ग्रन्थ मुनि इत्यादि सत्पात्रो को आहार...**' दूसरे में भी आता है, इसमें भी आता है। सब लिया है। मुनि की मुख्य बात है न ?

'**वीतरागी मुनि को भोजन-आहार देकर...**' इसमें भी लिखा है। पुरानी (पुस्तक में भी) लिखा है। स्वयं आहार करता है, वह राग है न ? श्रावक को भान है परन्तु... इसलिए राग घटाने में ओहो..! मुनि का योग, धर्मात्मा धर्मी का योग, पात्र धर्मपात्र का योग... समझे न ? उन्होंने लिखा है हाँ ! अर्थ है न ? '**मुनि व पात्र श्रावक को आहारदान देकर...**' यह पुस्तक है न, इसमें भी है और उसमें भी है। पुराना है न पुराना ! '**आदि पात्रों को आहार कराकर बाद में स्वयं भोजन करना।**' फिर अपने भी लिखा है, अन्तर में थोड़ा है। '**निर्ग्रन्थमुनि आदि सत्पात्रों को आहार देने के पश्चात्...**' पीछे (भावार्थ में) लिखा है। समझ में आया ? अर्थात् मुख्य मुनि की बात की है। अपने साधर्मी धर्मात्मा को भी आहार देकर फिर स्वयं भोजन करे। लो ! यहाँ तो आवे, सब भाषा क्या आवे ? आहार करे, यह दे – व्यवहार की बात में जो कथन

आवे ऐसा आवे न! एक ओर कहते हैं, आहार-पानी कर नहीं सकता। परन्तु समझ तो सही। खाना-पीना करे, वह क्रिया कौन करे ? परन्तु इसे ऐसा विकल्प होता है कि मुनि को आहार देकर मुझे आहार करना - ऐसे विकल्प की मर्यादा में वह व्रत कहा जाता है। इतना बताते है। '**वह अतिथि संविभाग व्रत कहलाता है।**' समझ में आया ? कथन तो ऐसा ही आये न ! उसका परमार्थ तो जैसा है, वैसा है।

भावार्थ :- '**(१) स्वोसन्मुखता द्वारा अपने परिणामों को विशेष स्थिर करके प्रतिदिन विधिपूर्वक सामायिक करना, वह सामायिक शिक्षाव्रत है। लो (२) प्रत्येक अष्टमी तथा चतुर्दशी के दिन कषाय और व्यापारादि कार्यों को छोड़कर (धर्मध्यान पूर्व) प्रौषधसहित उपवास करना, वह प्रौषधोपवास शिक्षाव्रत कहलाता है। (३) परिग्रह परिमाण - अणुव्रत में निश्चित की हुई भोगोपभोग की वस्तुओं में जीवनपर्यन्त के लिए...**' उसका किया था आजीवन का। '**अथवा किसी निश्चित समय के लिए नियम करना, वह भोगोपभोग परिमाण शिक्षाव्रत कहलाता है।**' लो ! '**(४) निर्ग्रन्थमुनि आदि सत्पात्रों को आहार देने के पश्चात् स्वयं भोजन करना, वह अतिथि संविभाग शिक्षाव्रत कहलाता है।**' यह बारहव्रत श्रावक को आत्मा के सन्मुख की दृष्टि में स्थिरता का अंश विशेष हुआ, उस जगह उसे ऐसे बारह व्रत होते हैं, जिससे वह एकावतारी होकर मुक्ति हो - ऐसी योग्यता होती है। इत्यादि विशेष कहेंगे।

(श्रोता :- प्रमाण वचन गुरुदेव !)

❁

यह आत्मा है सो ज्ञायक अखण्ड स्वरूप है । राग, कर्म व शरीर तो उसके नहीं, लेकीन पर्यायमें जो खण्ड-खण्ड ज्ञान है वह भी उसका नहीं । जड़इन्द्रियाँ तो उसकी नहीं, लेकिन भावेन्द्रिय व भावमन भी उसके नहीं । एक-एक विषयको जाननेवाली ज्ञानकी पर्याय; खण्ड-खण्ड ज्ञान है - यह पराधीनता है ,परवशता है, यह दुःख है ।

(परमागमसार-३८६)